तेरापंथ के महान् श्रावक

□ **मुनि श्री विजयकुमार**
युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के शिष्य

तेरापंथ एक प्राणवान धर्मसंघ है। इसकी गौरवशाली परम्पराओं को देखकर हर व्यक्ति इसके प्रति श्रद्धावनत हो जाता है। प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र जी ने विश्वयात्रा से लौटकर जब युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के दर्शन किये तब निवेदन किया—"मैंने अनेक देशों में भ्रमण किया और वहाँ पर अनेक धर्म संस्थान भी देखे किन्तु तेरापंथ जैसा सुव्यवस्थित संगठन कहीं नजर नहीं आया। एक आचार्य के नेतृत्व में यह संघ सदा फलता फूलता रहा है। आचार्य भिक्षु ने इसकी नींव में मर्यादा और अनुशासन के दो खम्भे ऐसे गाड़ दिये हैं कि इस संघ रूपी प्रासाद को कहीं कोई खतरा नहीं है। एक से एक महान् आचार्य सौभाग्य से इस गण को मिलते रहे हैं। वर्तमान में आचार्य तुलसी की छत्रछाया में इस संघ ने विकास के और नये आयाम उद्घाटित किये हैं। आचार्य भिक्षु ने बीज वपन किया था वही बीज आज आचार्य श्री के सद्प्रयासों से वट वृक्ष के रूप में लहलहा रहा है और अब तो वह वृक्ष इतने विशाल आयतन में फैल गया है कि उस वृक्ष की शीतल छांह में समस्त वसुधा के प्राणी बैठकर आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। इस संघ को सर्वांग सम्पन्न शरीर की उपमा दी जा सकती है। शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग होता है मस्तिष्क। आचार्य को मस्तिष्क से उपमित किया जा सकता है। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, इसके हाथ-पैर के समान हैं। मस्तिष्क पूर्ण विकसित हो और हाथ पैर को अगर लकवा मार गया हो तो व्यक्ति का कोई भी चिन्तन कार्य रूप में परिणत नहीं हो पाता है। व्यक्ति जीवित अवस्था में भी मृतत्व की पीड़ा को भोग लेता है। तेरापंथ को जीवन्त धर्मसंघ इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि उसका हर अवयव मजबूत है। तेरापंथ की प्रगति का श्रेय आचार्यों और त्यागी-बलिदानी साधु-साध्वियों को तो है ही किन्तु उन महान् श्रावक और श्राविकाओं को भी है जिन्होंने विविध कसौटियों में अटूट शासन-निष्ठा का परिचय दिया, अपनी सेवा और कर्त्तव्यपरायणता से शासन को गौरवान्वित किया। इसीलिए तो स्वामीजी अपनी एक रचना में लिखा है—"साधु-श्रावक रतनां री माला एक मोटी दूजी नान्ही रे"। तेरापंथ के इतिहास के साथ श्रावक-श्राविकाओं का इतिहास सदा अमर रहेगा। प्रस्तुत निबन्ध में मुझे केवल प्रमुख श्रावकों का जीवन दर्शन करवाना है। श्रावकों की भी एक लम्बी शृंखला मेरे सामने है। इस लघुकाय निबन्ध में सभी श्रावकों का समग्र जीवन वृत्त लिख पाना असम्भव है फिर भी कुछ श्रावकों का वर्णन यहाँ प्रस्तुत हैं।

मेवाड़ के प्रमुख श्रावक

(१) **श्री शोभजी कोठारी**—ये स्वामीजी के अनन्य श्रावक थे। इनके पिता श्री भेंरोजी ने केलवा के प्रथम चातुर्मास में ही स्वामीजी की श्रद्धा ग्रहण की थी। शोभजी सांसारिक और धार्मिक दोनों क्षेत्रों में कुशल थे। इनको केलवा के ठिकाणों का प्रधान नियुक्त किया गया। एक बार किसी कारण से केलवा के ठाकुर के साथ इनका मन-मुटाव हो गया। फलतः इन्हें केलवा छोड़कर नाथद्वारा जाना पड़ा। इस प्रकार बचकर भाग जाने का पता लगने पर केलवा के ठाकुर और अधिक आवेश में आ गये। वे शोभजी को किसी जाल में फँसाकर अपमानित करना चाहते थे। नाथद्वारा उनकी जागीर में नहीं था। वहाँ के सर्वेसर्वा गोसांई जी थे। गोसाँईजी के साथ उनके सम्पर्क अच्छे थे। ठाकुर ने शोभजी पर कई अभियोग लगा दिये और गोसांई जी से उन्हें कारागार में बन्द करने का आदेश दिला दिया। शोभजी को कैदी बना लिया गया। स्वामीजी आस-पास के गाँवों में विचर रहे थे। उन्हें जब इस घटना का पता चला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो वे नाथद्वारा पधारे। अपने भक्त को दर्शन देने के लिए जेल में आये। उनकी कोठरी के सामने स्वामीजी पहुँचे तब वे गुनगुना रहे थे—

(१) मोटो फंद पड्यो इण जीव रे कनक कामणी दोय।
(२) उलझ रह्यो निकल सकूं नहीं रे, दर्शण दो पड्यो विछोह।
(३) स्वामी जी रा दर्शन किण विध होयै

स्वामीजी कुछ क्षण उनकी तल्लीनता देखते रहे फिर वे बोले—शोभजी दर्शन कर लो। स्वामीजी को प्रत्यक्ष आँखों के सामने देखकर हर्ष विभोर हो गये। वे वन्दन करने के लिए खड़े हुए और बाँधी हुई पैरों की बेड़ियाँ तिनके ज्यों टूट गईं। जेल संरक्षक को यह घटना देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने शोभजी जैसे महान् व्यक्ति को अन्दर कैद रखना उचित नहीं समझा। शोभजी को मुक्त कर दिया गया। इन्होंने अनेक व्यक्तियों को स्वामीजी का अनुयायी बनाया। शोभजी भक्त के साथ-साथ अच्छे कवि भी थे। उन्होंने संकल्प किया था कि स्वामीजी जितने पद्य बनायेंगे, उनका दशमांश वे बनायेंगे। इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन में ३८०० पद्यों की रचना की। उनके कई गीत आज भी भाई-बहिनों के मुँह पर सुने जाते हैं।

(२) **श्री केशरजी भण्डारी**—श्रावक श्री केशरजी का जन्म कपासन में हुआ है। कुछ समय पश्चात् इन्होंने अपना निवास स्थान उदयपुर बना लिया। श्रावक श्री शोभजी के प्रयत्न से ये स्वामीजी के अनुयायी बने थे। काफी समय तक वे प्रच्छन्न रूप में रहे थे। उस समय तेरापंथी बनने वालों को काफी सामाजिक कठिनाइयाँ सहनी पड़ती थीं। भारमल स्वामी के उदयपुर निष्कासन के समय ये प्रकट रूप में आमने आये। कई भ्रान्तियों में पड़कर राजा ने भारमलजी स्वामी को उदयपुर से निकाल दिया और मेवाड़ भर से निकालने की भी योजनाएँ चल रही थीं। उस समय केशरजी ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने महाराणा के मन को मोड़ा और उनकी गलती का भान कराया। महाराणा ने दो पत्र लिखकर भारमलजी स्वामी को उदयपुर पधारने की प्रार्थना की। उस समय केशरजी ने संघ और आचार्य की जो सेवा की वह सदा स्मरणीय रहेगी। केशरजी अनेक वर्षों तक महाराणा के यहाँ ड्योढ़ी (अन्तःपुर) के अधिकारी के रूप में रहे। कई वर्षों तक ये राज्य में कर-अधिकारी के रूप में रहे, कालान्तर में महाराणा ने इनको राज्य का न्यायाधीश नियुक्त किया। इनकी ईमानदारी और सेवा-भावना से महाराणा बहुत प्रभावित हुए, विश्वासपात्र होने से महाराणा इनकी हर बात को ध्यान से सुनते थे। इनके प्रयास से ही विरोधियों का सारा पाँसा पलट दिया गया। राजकीय कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी ये कुछ न कुछ समय प्रतिदिन स्वाध्याय में लगाते थे। इनके पास आगमों और शास्त्रों का अच्छा संग्रह भी था।

(३) **श्री अम्बालालजी कावड़िया**—श्री कावड़िया उदयपुर निवासी थे और सुप्रसिद्ध भामाशाह के वंशज थे। इनका ननिहाल तेरापंथी परिवार में था। इनको धर्म के संस्कार अपनी माँ से मिले। बाद में जयाचार्य के पास उन्होंने सम्यक् श्रद्धा ग्रहण की। वे वकालत भी करते थे। समाज की अनेक उलझनों को ये आसानी से सुलझा देते थे। गंगापुर की साध्वी श्री नजरकंवरजी की दीक्षा रुकवाने के लिए पुर निवासी चौथमलजी ने एक मुकदमा प्रारम्भ किया था, उस मुकदमे को विफल करने में इनका ही परिश्रम रहा था। वे शासन और आचार्य की सेवा तो करते ही थे किन्तु सेवा में आने वाले यात्रियों की सुविधाओं का भी ख्याल रखते थे। इनके विशेष निवेदन पर सं० १९७२ का चातुर्मास डालगणी ने उदयपुर में किया। चातुर्मास में सेवा का उन्होंने अच्छा लाभ उठाया। उन्होंने जयाचार्य से लेकर कालूगणी के शासन काल तक अपनी सेवाएं संघ को दीं। ६९ वर्ष का आयुष्य पूरा कर कालधर्म प्राप्त किया।

(४) **हेमजी बोल्या**—ये लावासरदारगढ़ के निवासी थे। ये ऋषिराय के शासन काल में हुए थे। साधु-साध्वियों की सेवा काफी रुचि से करते थे। तात्त्विक ज्ञान अच्छा सीखा हुआ था। पच्चीस वर्ष की भर यौवन अवस्था में इन्होंने यावज्जीवन सपत्नीक ब्रह्मचर्य स्वीकार कर लिया था। योगों की स्थिरता का अच्छा अभ्यास था। एक बार पश्चिम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रात्रि में वे सामायिक कर रहे थे। जब वे ध्यानस्थ बैठे थे, एक सर्प उन पर चढ़ गया। हेमजी को उसके लिजलिजे स्पर्श से पता चल गया कि कोई सर्प मेरे पर रेंग रहा है, फिर भी वे वैसे ही अविचल बैठे रहे। साँप पूरे शरीर पर घूमता हुआ एक तरफ चला गया। यह उनकी स्थिरता और निर्भीकता का एक उदाहरण था। एक बार वे अपनी दुकान पर बैठे सामायिक कर रहे थे। किसी ने आकर सूचना दी कि आपके घर पर तो आग लग गई है। साधारण व्यक्ति के मन में जहाँ इस प्रकार के संवाद से उथल-पुथल मच सकती है वहाँ हेमजी का मन डाँवाडोल नहीं हुआ। सामायिक पूरी होने के बाद जब वे घर पहुँचे तो आग बुझा दी गई थी, कोई विशेष नुकसान भी नहीं हुआ।

उनका मुख्य धन्धा ब्याज का था। किसानों और चरवाहों को काफी रकम ब्याज पर देते थे। ब्याज उगाहने में वे बड़ी कोमलता का व्यवहार करते थे। किसी की विवशता से लाभ उठा लेना उनका लक्ष्य नहीं रहता था। एक बार किसी एक व्यक्ति ने उनसे रुपये उधार लिये। स्थिति बिगड़ जाने से वह रुपया चुका नहीं पाया। हेमजी ने जब रुपया चुकाने के लिए तकाजा किया तो उसने दयनीय शब्दों में कहा—वैसे तो रुपया चुकाने में असमर्थ हूँ। इतना तो हो सकता है कि मैं अपनी भेड़ बकरियों को बेचकर आपकी रकम चुका दूँ किन्तु इससे मेरा सारा परिवार भूखा मर जायेगा। हमारा गुजारा इन्हीं पर निर्भर है। हेमजी ऐसा नहीं चाहते थे, उन्होंने उस राशि को बट्टे खाते लिखकर खाता बराबर कर दिया। यही उनके आदर्श धार्मिकता की निशानी थी।

(५) **श्री जोधोजी**—बावलास निवासी श्रावक जोधोजी ऋषिराय के समय के श्रावक थे। आर्थिक अवस्था से कमजोर होते हुए भी अनैतिकता का एक भी पैसा घर में नहीं लाना चाहते थे। सन्तोष और सादगी प्रधान इनका जीवन था। इनके सात पुत्रियाँ थीं। उस समय लड़कियों की कीमत ज्यादा थी। क्योंकि लड़के वाले को विवाह करने के लिए धन देने पर लड़कियाँ मिलती थीं। एक-एक समय की स्थिति होती है। तो ऐसे समय में सात पुत्रियाँ होना सौभाग्य की बात थी; क्योंकि घर बैठे ही जोधोजी धनवान बन जाते, किन्तु जोधोजी ने इस परम्परा का बहिष्कार किया। उन्होंने लड़कियों को पैसों में बेचना उचित नहीं समझा। सातों पुत्रियों को अच्छे घरों में ब्याहा गया। जहाँ भी इनकी लड़कियाँ गईं, इन्होंने पूरे घर को तेरापंथी बना लिया और दूसरे परिवारों को भी अपने अनुकूल बनाया।

बावलास में एक चमार भी श्रावक था। बड़ी लगन वाला भक्त था। जोधोजी श्रावकों में मुखिया थे। उस चमार श्रावक के साथ उनका अच्छा पारस्परिक सौहार्द था। किसी कारण से दोनों में खटपट हो गई। एक बार किसी राहगीर ने चमार श्रावक को सूचना दी कि मुनि हेमराजजी बावलास पधार रहे हैं, बस थोड़ी ही देर में पहुँचने वाले हैं। अब प्रमुख श्रावक जोधोजी को समाचार बताना जरूरी हो गया। वह पशोपेश में पड़ गया क्योंकि उनके साथ बोलचाल बन्द थी। आखिर उसने निर्णय किया कि यह वैयक्तिक झगड़ा है, धर्म के कार्य में तो हम एक ही हैं। वह चमार जोधोजी के घर गया और यह समाचार बताया। हेमराजजी स्वामी गाँव में पधारे, व्याख्यान हुआ। जोधोजी उस चमार के साधर्मिक वात्सल्य से इतने प्रभावित हुए कि व्याख्यान समाप्ति पर खड़े होकर बोले "इस चमार ने मुनिश्री के आगमन का समाचार मिलते ही मुझे खबर दी। मुझे अगर सूचना मिलती तो शायद मैं इसे नहीं कहता। मैं सेठ होकर भी इस चमार से गया। बीता ठहरा और यह चमार होकर भी मुझसे ऊँचा उठ गया।"

जोधोजी की आत्म-निन्दा ने उनको महान् बना दिया। दोनों में फिर से अच्छा सम्बन्ध जुड़ गया। गुरुदर्शन के निमित्त अनेक बार इन्होंने पद यात्राएँ भी की थी। कहते हैं पूरी यात्रा में एक रुपया से अधिक खर्च उनका नहीं होता था।

(६) **श्री अम्बालालजी मुरड़िया**—सुप्रसिद्ध श्रावक श्री अम्बालालजी मुरड़िया उदयपुर के निवासी थे। वे श्रीलालजी मुरडिया के सुपुत्र थे। जयाचार्य के पास इन्होंने गुरु-धारणा ली थी। ये राजकीय और धार्मिक दोनों कार्यों में प्रमुख थे। वे उस समय के एक कुशल अभियन्ता थे। महाराणा सज्जनसिंहजी के कृपा-पात्र थे। इनकी सेवाओं से तुष्ट होकर महाराणा ने उनको 'राजा' की उपाधि से अलंकृत किया था। तत्पश्चात् लोग उन्हें 'अंबाव राजा' कहकर ही पुकारते थे। एक बार महाराणा सज्जनसिंहजी की भावना हुई कि किसी पर्वत पर अपने नाम से किला बनाया जाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिछोला झील पर स्थित राजमहलों के सामने दिखने वाली सर्वाधिक ऊँची चोटी को उन्होंने पसन्द किया। अंबाव राजा को निर्माण कार्य की जिम्मेदारी दी गई। उन्होंने चोटी तक पहुँचने के लिए मार्ग से लेकर राजमहल बनाने तक का कार्य सफलता से किया। सज्जनगढ़ के नाम से यह स्थान आज भी प्रसिद्ध है। अंबाव राजा की देखरेख में दूसरा किला उदयपुर की पार्श्ववर्ती पहाड़ी पर बनाया गया। महाराणा ने उसका नाम अंबावराजा के नाम पर अंबावगढ़ दिया।

अंबावराजा के छोटे भाई प्यारचन्दजी उग्र प्रकृति के थे। एक बार किसी हत्या के मामले में उन्हें मृत्युदण्ड दे दिया गया। उन्हीं दिनों अंबावराजा ने महाराणा को अपने घर पर निमन्त्रित किया और बहुत बढ़िया सत्कार किया। महाराणा ने प्रसन्न होकर कहा—अंबाव ! जो तेरी इच्छा हो सो माँग ले। अवसर देखकर उन्होंने कहा—मेरे भाई को मुक्त करने की कृपा करें। महाराणा ने कहा—अरे अंबाव कुछ धन जागीर माँग लेते। अंबावराजा ने विनम्रता से कहा—अन्नदाता, मेरा भाई मौत के फन्दे में लटक रहा है और मैं जागीरी माँगूं। यह कैसे हो सकता है ? महाराणा ने भाई को तत्काल छोड़ दिया और अंबावराजा की प्रशंसा करते हुए कहा—भाई हो तो ऐसा होना चाहिये। महाराणा की कृपा उत्तरोत्तर बढ़ती रही। अंबावराजा का व्यक्तित्व राज्यक्षेत्र और धर्मक्षेत्र दोनों में मान्यता प्राप्त था।

मारवाड़ के प्रमुख श्रावक

(७) **श्री गेहलालजी व्यास**—गेरूलालजी व्यास जोधपुरनिवासी ब्राह्मण थे। ये स्वामीजी के प्रथम तेरह श्रावकों में से एक थे। और उन तेरह में भी प्रथम कोटि के कहे जा सकते हैं। तेरापंथ की स्थापना से पूर्व स्वामीजी जब जोधपुर पधारे तब ही इन्होंने परम्परागत धर्म को छोड़कर जैन धर्म स्वीकार किया था। स्वामीजी के सुलझे हुए विचारों से ये बहुत प्रभावित हुए। जैनत्व स्वीकार कर लेने से इनकी विरादरी के लोग इनसे बहुत नाराज हुए। किन्तु व्यासजी अपनी श्रद्धा में दृढ़ थे। इनका बेटा विवाह के योग्य हो गया किन्तु कोई भी लड़की देने के लिए तैयार नहीं था। व्यासजी ने किसी अन्य गाँव में लड़के का सम्बन्ध किया। दहेज में लड़की के पिता ने अन्य वस्तुओं के साथ मुखवस्त्रिका, आसन और पूँजणी भी दी। इसे देख लोगों ने सम्बन्धियों को परस्पर भिड़ाने के लिए कहा—देखो, समधी ने कैसा मजाक किया है। व्यासजी ने कहा—मजाक नहीं, यह बुद्धिमानी की बात है, क्योंकि समधी जानता है कि मेरी लड़की जैन कुल में जा रही है इसलिए सामायिक, पौषध भी करेगी। इसलिए इन वस्तुओं की जरूरत पड़ेगी। लोग अपने आप चुप हो गये।

व्यासजी श्रद्धालु श्रावक होने के साथ धर्मप्रचारक भी थे। उन्हें व्यापारिक कार्यों से दूर प्रदेशों में जाना पड़ता था। वे वहां जाकर व्यापार के साथ-साथ धर्म-चर्चा भी किया करते थे। अनेक व्यक्तियों को उन्होंने सम्यक् श्रद्धा प्रदान की। कच्छ में तेरापंथ का बीज वपन करने का श्रेय इन्हीं को है। एक बार १८५१ में ये व्यापारार्थ कच्छ गये। वहाँ मांडवी में टीकमजी डोसी के यहाँ ठहरे। उनसे धर्म-विषयक चर्चा छेड़ी। स्वामीजी की विचारधारा उन्हें बतलायी। वे बहुत प्रभावित हुए और स्वामीजी के मारवाड़ में जाकर प्रत्यक्ष दर्शन किये और सम्यक् श्रद्धा ग्रहण की। उसके बाद कई परिवारों को श्रद्धालु बनाया।

(८) **श्री विजयचन्दजी पटवा**—विजयचन्दजी पाली के धनी व्यक्तियों में सबसे अग्रणी थे। स्वामीजी के पाली पदार्पण के समय सम्पर्क में आये। समाज-भय के कारण ये दिन में नहीं आते। रात्रि में भी प्रवचन सम्पन्न होने के बाद स्वामीजी के पास तत्त्वचर्चा करते थे। एक बार ये अपने मित्र को साथ लेकर आये। चर्चा शुरू हुई। स्वामीजी ने सन्तों से सो जाने के लिए कहा और बताया मुझे अभी कुछ समय लगेगा। प्रश्न-प्रतिप्रश्न चलते रहे। चर्चा चलते-चलते पूर्व दिशा में लालिमा छाने लगी। अन्ततोगत्वा स्वामीजी का रात्रि जागरण सफल हुआ, दोनों व्यक्तियों ने गुरु-धारणा की और अपने घर रवाना हुए। स्वामीजी ने सन्तों को पुकारा—उठो सन्तो ! प्रतिक्रमण का समय होने वाला है। स्वामीजी को विराजे देख सन्तों ने पूछा—आपको विराजे कितनी देर हुई ? स्वामीजी ने कहा—कोई सोया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो तो विराजे। सन्तों को आश्चर्य हुआ। स्वामीजी ने पूरी रात जागरण कर उन्हें असली तत्त्व समझाया। उसके बाद दोनों की पत्नियों ने भी गुरुधारणा की। पटवाजी के तेरापंथी बन जाने से काफी लोग झुँझलाये। ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति का सामाजिक बहिष्कार तो वे नहीं कर सकते थे पर लोगों ने उनके विरोध में काफी अफवाहें फैलायीं किन्तु वे अपनी श्रद्धा में मजबूत रहे। अपने जीवन में इन्होंने सैकड़ों व्यक्तियों को सम्यक्त्वी बनाया। स्वामीजी ने उनकी दृढ़ श्रद्धा को देखकर एक बार कहा था—"पटवाजी को सन्तों से विमुख करने के लिए लोग कितनी उल्टी बातें उन्हें कहते हैं परन्तु वे इतने दृढ़ विश्वासी हैं कि मानो क्षायिक सम्यक्त्वी हो।"

पटवाजी एक बार दुकान से उठकर स्वामीजी का व्याख्यान सुनने गये। सामायिक में बैठ गये। अब याद आया कि दो हजार रुपयों का थैला दुकान के बाहर भूल गया। स्वामीजी को निवेदन किया—आज तो आर्त्तध्यान की स्थिति पैदा हो गई। स्वामीजी ने उनको धीरज बँधाया और सामायिक में योगों की स्थिरता रखने की प्रेरणा दी और कहा—शुद्ध सामायिक की तुलना में दो हजार रुपये तुच्छ हैं। पटवाजी ने मन को जमाया, शुद्ध सामायिक को पूर्ण कर जब दुकान पर गये तो उन्हें देखकर आश्चर्य हुआ कि एक बकरा उस थैले पर इस ढंग से बैठा है कि थैला दूसरे को नजर भी न आये। उनके रुपये उन्हें वहीं सुरक्षित मिल गये।

एक बार जोधपुरनरेश ने पाली के व्यापारियों से एक लाख रुपये की माँग की। दुकानदारों ने कसमसाहट की। नगर में उस समय दो ही धनी साहुकार थे। एक पटवाजी, दूसरे एक माहेश्वरी थे। पटवाजी ने विषम स्थिति देखकर माहेश्वरीजी से कहा—इन छोटे व्यापारियों को कसना अच्छा नहीं है, यह रकम आधी-आधी हम ही भेज दें। दोनों व्यापारियों ने पचास-पचास हजार रुपया जोधपुरनरेश को भेज दिये। नरेश ने वह रकम वापिस भेज दी यह कहकर कि मुझे तो केवल पाली के व्यापारियों की परीक्षा लेनी थी। इस घटना से पटवाजी का नरेश पर अच्छा प्रभाव पड़ा। पटवाजी दृढ़श्रद्धालु और व्यवहारकुशल श्रावक थे।

(९) **श्री बहादुरमलजी भंडारी**—भंडारीजी जोधपुर के सुप्रसिद्ध श्रावक थे। इनको धार्मिक संस्कार अपनी माता से मिले। साधु-साध्वियों के सम्पर्क से वे संस्कार दृढ़ होते रहे। जयाचार्य के प्रति इनके मन में अटूट आस्था थी। पाप भीरु और सादगीप्रिय व्यक्ति थे। जोधपुरनरेश की इन पर अच्छी कृपा थी। जोधपुर राज्य को इन्होंने काफी सेवाएँ दीं। राजा ने इन्हें कोठार और बाहर के विभाग पर नियुक्त किया। काफी समय तक राजकोष का कार्य भी इन्हें सौंपा गया। कुछ समय के लिए ये राज्य के दीवान भी रहे। इनकी कार्यकुशलता से प्रभावित होकर नरेश ने इनको जागीर के रूप में एक गाँव भी दिया। नरेश की इतनी कृपा देखकर लोगों ने एक तुक्का जोड़ दिया—"माहे नाचे नाजरियो, बारे नाचे बादरियो" यानि अन्तःपुर में नाजरजी का बोलबाला है और महाराजा के पास बहादुरमलजी का।

राजकीय सेवाओं के साथ-साथ धर्मशासन को भी इन्होंने बहुत सेवाएँ दी थीं। अनेक घटनाओं में से एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण घटना मुनिपतजी स्वामी के दीक्षा सम्बन्धी है। मुनिपतजी स्वामी के पिता जयपुरनिवासी थानजी के यहाँ गोद आये थे। किसी कारण थानजी और मुनिपतजी स्वामी के पिता के परस्पर अनबन हो गई और वे थानजी से अलग रहने लगे। पृथक् होने के बाद पिता का देहान्त हो गया। कुछ वर्षों बाद माता और पुत्र मुनिपतजी ने जयाचार्य के पास सं० १९२० के चूरू चातुर्मास में दीक्षा ले ली। अब थानजी को विरोध का अच्छा अवसर मिल गया। उन्होंने जोधपुरनरेश को आवेदन कर दिया कि एक मोडे ने मेरे पोते को बहकाकर मूँड लिया है अतः आप उस मोडे को गिरफ्तार कर मेरा पोता मुझे दिलावें। नरेश ने पूरी स्थिति की जानकारी किये बिना आदेश कर दिया और दस सवारों को लाडनूं की तरफ भेज दिया और कहा—उस मोडे को गिरफ्तार कर हाजिर किया जाय। उस समय जयाचार्य लाडनूं में थे। बहादुरमलजी को इस षड्यन्त्र का पता लग गया। वे रात के समय ही नरेश के पास गये। सारी स्थिति बतायी और आदेश को रद्द करने का रुक्का लिखवाया। वह रुक्का लेकर उनके पुत्र किशनलालजी एक ऊँटणी पर बैठकर गये और उन सवारों को बीच में ही रोक दिया। जयाचार्य को जब यह पता लगा तो वे भण्डारीजी की बुद्धिमत्ता पर बहुत प्रसन्न हुए। थोड़े दिनों बाद जब भण्डारीजी ने दर्शन किये तब भण्डारीजी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बगशीश के रूप में सं० १९२४ का चातुर्मास जोधपुर करवाया। भण्डारीजी ने समय-समय पर शासन को बहुत सेवाएँ दीं। वे सब इतिहास में अंकित रहेंगी। ७० वर्ष की उम्र में इनका देहावसान हुआ। मघवागणी का चातुर्मास उस समय जोधपुर में था।

(१०) **श्री दुलीचंदजी डूगड़**—श्री दुलीचंदजी लाडनूं निवासी थे। इन्होंने तीसरे आचार्य श्री ऋषिराय से लेकर कालूगणी तक छः आचार्यों की सेवा की थी। धर्म के प्रति इनकी आस्था अद्वितीय थी। शासन को विपत्ति भरे अवसरों पर दुलजी ने प्राणों को हथेली पर रखकर जो सेवाएँ दीं वे सदा गौरव से याद की जायेंगी। मुनिपतजी स्वामी के दीक्षा प्रसंग को लेकर जोधपुरनरेश ने जयाचार्य को गिरफ्तार करने का आदेश निकाल दिया था। लाडनू जब खबर मिली तब दुलजी ने जयाचार्य को निवेदन किया आप मेरी हवेली में पधार जायें। अपने आचार्य की सुरक्षा के लिए श्रावकों ने यह उचित समझा कि पुराना स्थान छोड़ दिया जावे। जयाचार्य के मन में भय नहीं था। पर दुलजी व अन्य श्रावकों का आग्रह देखकर जयाचार्य वहाँ पधारे। दुलजी ने निवेदन किया हम कुछ श्रावक यहाँ द्वार पर पहरा देंगे। हमारे जीवित रहते कोई भी आपको गिरफ्तार नहीं कर सकेगा। यों प्राणों की बलि देने तक उनकी तैयारी थी। यद्यपि भण्डारी की दक्षता से वह आदेश रद्द कर दिया गया फिर भी उनका वह साहस सदा दूसरों को प्रेरणा देता रहेगा। दुलजी आचार्यों के अत्यन्त कृपा-पात्र श्रावक थे। सभी आचार्य इनकी बात को बहुत आदर से सुनते थे। इनके आग्रह पर आचार्यों को कई बार अपना निर्णय बदलना पड़ता था। इनके जीवन की और भी घटनाएँ हैं किन्तु विस्तारभय से सबका उल्लेख होना संभव नहीं है।

(११) **श्री मानजी मूंथा**—ये जसोल के निवासी थे। स्वामी भीखणजी के प्रति इनके मन में बेजोड़ श्रद्धा थी। अपने श्रद्धाबल से इन्होंने हर कठिनाई को दूर किया। एक बार एक काले साँप ने उनको डस लिया। काला साँप अपेक्षाकृत अधिक विष वाला होता है। लोगों ने तत्काल उपचार कराने का परामर्श दिया या किसी मन्त्रवादी को बुलाकर विष-प्रभाव को दूर करने के लिए कहा। किन्तु मानजी ने कहा—मेरी औषध तो स्वामीजी का नाम है। उन्होंने एक धागा मँगबाया, स्वामी जी के नाम से मन्त्रित किया और साँप के काटे हुए स्थान के पास बाँध दिया। बाद में झाड़ा लगाते हुए बोले—"भिक्षु बाबो भलो करेगा, नाम मन्त्र का काम करेगा।" थोड़ी ही देर बाद विष का संभावित प्रभाव शान्त हो गया। उनको ऐसी प्राणवान् श्रद्धा को देखकर सबको आश्चर्य हुआ। इस घटना के कई वर्ष बाद तक जीवित रहे। मानजी शासन की मर्यादाओं के अच्छे जानकार थे। कहीं भी किसी साधु में मर्यादा के प्रति उपेक्षाभाव देखते, उन्हें विनम्रतापूर्वक निवेदन करते। वे धर्मसंघ के हितगवैषी थे।

थली के प्रमुख श्रावक

(१२) **श्री जेठमलजी गधैया**—सरदारशहर के गधैया परिवार में तेरापंथ की श्रद्धा जेठमलजी से ही प्रारम्भ हुई। उस समय सरदारशहर बहिनों का क्षेत्र कहलाता था। भाइयों पर संघ से निकले हुए छोगजी चतुर्भुजजी का प्रभाव था। मुनि कालूजी के प्रयासों से भाइयों में तेरापंथ की श्रद्धा पैदा हुई। जेठमलजी टालोकरों के कट्टर भक्त बन गये थे। उन्होंने अन्य सन्तों के पास जाना तो दूर वन्दना तक का त्याग ले रखा था। एक बार रास्ते में ही कालूजी स्वामी के सहवर्ती मुनि छबिलाजी ने उनसे बात की फिर कालूजी स्वामी से ठीकाने के बाहर ही बातचीत की। उनकी शंकाएँ दूर हुईं और जयाचार्य को गुरु रूप में उन्होंने धारण कर लिया। गधैयाजी के तेरापंथ की श्रद्धा स्वीकार कर लेने के बाद अनेकों भाइयों ने सही मार्ग को अपनाया। गधैयाजी सरदारशहर के प्रमुख व्यक्तियों में थे अतः उनका अनुकरण दूसरे लोग करें यह स्वाभाविक ही था। अपने पुत्र श्रीचन्दजी जो उस समय कलकत्ता थे उनको पत्र लिखकर अपनी धार्मिक मान्यता व तेरापंथ की श्रद्धा के बारे में बता दिया और उन्हें भी इस ओर प्रेरित किया। उन्होंने भी जयाचार्य को गुरु रूप में स्वीकार कर लिया। इनका जीवन वैराग्यमय था। चालीस वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य स्वीकार कर लिया था। खान-पान और रहन-सहन में भी काफी संयम रखते थे। प्रारम्भ में इनकी आर्थिक अवस्था सामान्य थी। खेती का धन्धा किया करते थे। जेठमलजी कुछ नया व्यापार करना चाहते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलकत्ता में लाल कपड़े का व्यापार अच्छा चला। कुछ ही वर्षों में इनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो गई। इनके पुत्र श्रीचन्दजी जब कमाने में होशियार हो गये तब इन्होंने देश जाने का प्रत्याख्यान कर लिया। जीवन की सन्ध्या में इन्होंने निवृत्तिप्रधान जीवन जीया।

(१३) **श्री चेनरूपजी दूगड़**—चेनरूपजी सरदारशहर के रहने वाले थे। ये स्वाभिमानी और धुन के धनी व्यक्ति थे। आज तो इनका परिवार अर्थ से अत्यधिक सम्पन्न है किन्तु चेनरूपजी अपनी बाल्यावस्था में बहुत गरीब थे। घर की दयनीय अवस्था ने मजदूरी करने के लिए विवश कर दिया। एक बार किसी सेठ के यहाँ हवेली पर इनको काम मिला। मिस्त्री ने इनको गारे की तगारियाँ भर-भर कर लाने को कहा। कहीं कोई गलती हो गई होगी उस पर मिस्त्री ने उसके शिर पर करणी की मार दी। चेनरूपजी उस समय २१ वर्ष के थे। राज मिस्त्री के इस अपमान से उनके स्वाभिमान को बहुत चोट पहुँची। आगे के लिए उन्होंने मजदूरी नहीं करने का संकल्प कर लिया। उन्होंने बंगाल जाकर व्यापार शुरू करने का निर्णय किया। इतनी लम्बी यात्रा करने के लिए उनके पास कोई साधन नहीं था। आखिर पैदल यात्रा करने का निश्चय किया। वे अपनी धुन के पक्के थे। साढ़े तीन महिने निरन्तर चलकर वे बंगाल की राजधानी कलकत्ता पहुँचे। उन्होंने अपनी प्रथम सुसाफिरी में ही हजारों रुपयों का लाभ कमाया। वे एक साहसी व्यक्ति थे। व्यापार में उतार-चढ़ाव आने पर भी वे हिम्मत नहीं हारते थे। कलकत्ता में इनका व्यापार जमता गया। थोड़े ही वर्षों में इनका परिवार लखपतियों की गणना में आने लगा। इतना धन पास में होने पर भी वे धन के अभिमान से दूर थे। जीवन सादगी-प्रधान था। जयाचार्य के प्रति इनके मन में अटूट श्रद्धा थी।

(१४) **श्री रूपचन्दजी सेठिया**—सुजानगढ़ निवासी सुप्रसिद्ध श्रावक रूपचंदजी का जीवन अगणित विशेषताओं का पुंज था। इन्होंने पाँच आचार्यों की सेवाएँ कीं। आचार्यों के ये कृपा-पात्र थे। शासन के अन्तरंग और हित-गवैषी श्रावक थे। बचपन से ही इनमें धार्मिक संस्कार थे। साधु-साध्वियों के सम्पर्क से ये संस्कार निरन्तर वर्धमान होते रहे। इनके हर व्यवहार में धर्म की पुट रहती थी। पाप से जितना बचा जा सके उतना बचने का वे प्रयास करते थे। इनकी संयमप्रधान वृत्ति के कारण लोग उन्हें "गृहस्थ साधु" के आदरास्पद नाम से पुकारते थे। ये गृहस्थ वेष में साधु के समान रहते थे। हर क्रिया में बड़ा विवेक रखते थे। ३२ वर्ष की पूर्ण युवावस्था में पति-पत्नी दोनों ने ब्रह्मचर्य का पालन करना शुरू कर दिया था। पाँच वर्ष तक साधना करने के बाद आचार्य डालगणी के पास इन्होंने यावज्जीवन ब्रह्मचर्य स्वीकार कर लिया। इनके जीवन में अनेक त्याग थे। गृह-कार्यों में जैन संस्कारों को प्रधानता देते थे। डालगणी के ये निकटतम श्रावकों में से प्रथम कोटि के थे। जब डालगणी ने अपने पीछे शासन व्यवस्था करने की बात सोची तब श्रावक रूपचंदजी से परामर्श लिया। जब अन्य श्रावकों को अन्दर आने की मनाही होती तब भी रूपचंदजी के लिए रास्ता खुला रहता था। अन्तिम समय में भी उन्हें अच्छा धर्म का साज मिला। सं० १९८३ में उन्होंने जीवन को पूरा किया था। उस वर्ष कालूगणी उनको प्रातः और सायंकाल स्थंडिलभूमि से पधारते समय दर्शन देते थे। कभी-कभी विराजकर सेवा भी करवाते थे। फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को रात के समय ठिकाने में एक साथ अद्भुत प्रकाश हुआ। कालुगणी ने मन्त्रीमुनि को फरमाया—लगता है रूपचंदजी का शरीर शांत हो गया है। वस्तुतः उसी समय एक बजे के करीब उन्होंने शरीर को छोड़ा था। करीब १ घण्टा ५ मिनिट का संथारा भी आया।

(१५) **श्री छोगमलजी चौपड़ा**—समाजभूषण श्री छोगमलजी चौपड़ा गंगाशहर निवासी थे। उस समय जबकि समाज में शिक्षा को गौण समझा जाता था, छोगमलजी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्नातक (बी० ए०) की उपाधि प्राप्त की थी। थली में ओसवाल समाज के शायद ये पहले स्नातक थे। वे एक सफल वकील थे। वकालत करते हुए भी असत्य का प्रयोग नहीं करते थे। झूठे मामले को वे कभी स्वीकार नहीं करते थे। मारवाड़ी समाज के प्रथम बेरिस्टर कालीप्रसादजी खेतान उनके बारे में कहा करते थे कि न्यायालय में जैसी प्रतिष्ठा उनकी थी वैसी अन्य किसी की सुनने को नहीं मिली। उनका जीवन सादगी-प्रधान था। धर्मशासन को इन्होंने बहुत सेवाएँ दी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थीं। श्रीचन्दजी गधैया, वृद्धिचन्दजी गोठी, मगनभाई जवेरी, ईसरचन्दजी चौपड़ा, केशरीचन्दजी कोठारी आदि कई व्यक्ति इनके साथी थे। सब समाज एवं शासन के परम हितैषी थे। शासन पर आने वाली विपत्तियों को दूर करने के लिए आधी रात को भी तैयार रहते थे। विरोधियों द्वारा निकाले गये भिक्षा-विरोधी-बिल, दीक्षा-प्रतिबन्धक-बिल इन्हीं के प्रयासों से निरस्त हुए थे। इनकी सेवाएँ इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायेंगी। स्वभाव से सरल, मृदुभाषी, शासन और समाज के लिए सेवारत इनका व्यक्तित्व जन-जन के अनुकरणीय था। इनकी अविरल विशेषताओं के कारण समाज ने सं० १९९९ में इनको समाजभूषण की उपाधि से विभूषित किया। अपने नित्य नियमों में पक्के थे। अनेकों त्याग प्रत्याख्यान इन्होंने ले रखे थे। ८७ वर्ष की उम्र में इनका जीवन शान्त हुआ।

(१६) **श्री सुगनचन्दजी आंचलिया**—गंगाशहर के श्री सुगनचन्दजी आंचलिया शासन-निष्ठ व्यक्ति थे। धर्म-संघ और समाज की इन्होंने बहुत सेवा की। ये आचार्य श्री तुलसी के कृपापात्र श्रावक थे। आचार्य श्री की लम्बी यात्राओं में ये प्रायः सेवा में रहते थे। इनकी पत्नी भी सदा इनके साथ रहती थी। इनको धार्मिक संस्कार अपने पूर्वजों से मिले थे। गलत कार्यों से सदा बचते रहते थे। अनीति का पैसा इन्हें स्वीकार्य नहीं था। इनके कुशल व्यवहार की सब पर अच्छी छाप थी। सब कुछ सुविधाएँ होने पर भी ये विषयों से अलिप्त ज्यों रहते थे। ३७ वर्ष की यौवनावस्था से ही इन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन करना शुरू कर दिया था। ये धुन के धनी थे। जिस काम की जिम्मेदारी ले लेते उसे पूरा करके ही चैन लेते थे। ज्ञान-पिपासु थे। जब भी समय मिलता ये कुछ न कुछ अध्ययन करते रहते थे। स्वाध्याय इनके जीवन का अनिवार्य अंग था। प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रजी ने इनके लिए एक बार आचार्यश्री से कहा था—"गाँधीजी की तरह आपको भी एक जमुनालाल बजाज मिल गये हैं।" सामाजिक रूढ़ियों को इन्होंने कभी प्रश्रय नहीं दिया। मरने से पूर्व अपनी पत्नी को रोने, कपड़ा बदलने की इन्होंने मनाही कर दी थी। सं० २०१९ पौष सुदी ३ को इनकी मृत्यु हुई। समाज ने इनके निधन को अपूरणीय क्षति बताया।

कुछ अन्य प्रमुख श्रावक

(१५) **श्री गुलाबचन्दजी लूणिया**—ये जयपुर के निवासी थे। जयाचार्य का अग्रणी अवस्था में सं० १८८५ का चातुर्मास जयपुर में था। उस समय ५२० व्यक्तियों ने तेरापंथ की गुरुधारणा ली थी। उस समय इनके दादा गोरूलालजी भी तेरापंथी बने थे। गुलाबचन्द को धार्मिक संस्कार अपने पिताजी से मिले थे। इनके पिता गणेशमलजी एक प्रामाणिक और धर्मनिष्ठ श्रावक थे। इनके जवाहरात का धन्धा था। इनका व्यापारिक सम्बन्ध ज्यादा विदेशियों से रहता था। सन्तों से उनका सम्पर्क करवाते। व्यापार के साथ-साथ धर्म की दलाली भी करते रहते थे। गुलाबचन्दजी अच्छे गायक थे। खुद अच्छी रचनाएँ बनाते थे। कण्ठ मधुर था। आचार्य डालगणी इनके भजनों को रुचि से सुनते थे। जयपुर में कारणवश मुनि पूनमचन्दजी को गुणतीस वर्षों तक रुकना पड़ा था। उस समय अनेक व्यक्तियों ने थोकड़े आदि सीखे थे। श्री गुलाबचन्दजी ने भी तत्त्वज्ञान अच्छा हासिल किया था। आचार्यश्री के दर्शन साल में एक बार प्रायः कर लेते थे। कभी-कभी अनेक बार भी सेवा में उपस्थित हो जाते थे।

(१८) **श्री टीकमजी डोसी**—टीकमजी डोसी मांडवी के रहने वाले थे। जोधपुर के श्रावक भैरूलालजी व्यास व्यापारार्थ एक बार मांडवी आये थे। उनके सम्पर्क से इन्होंने सम्यक् श्रद्धा स्वीकार की थी। इसके बाद इन्होंने मारवाड़ में स्वामी भीखणजी के दर्शन किये और २१ दिन तक वहाँ ठहरे। स्वामीजी से अपनी जिज्ञासाओं का समाधान पाया, उसके बाद स्वामीजी से गुरुधारणा ली। ये कच्छ वापिस लौट गये। सही तत्त्व को समझ लेने के बाद दूसरों को भी इन्होंने सम्यक् तत्त्व समझाया। प्रारम्भिक प्रयास में ही पच्चीस परिवारों ने सम्यक्त्व स्वीकार की। उस समय कच्छ प्रान्त में साधु-साध्वियों का समागम नहीं होता था। इसी कारण लोग उनको टिकमजी के श्रावक या गेरुपंथी के नाम से पुकारते थे। बाद में जब १८८९ में ऋषिराय का पदार्पण हुआ तब आचार्य श्री रायचन्दजी स्वामी से गुरु धारणा ली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और अपने को तेरापंथी कहना प्रारम्भ किया। टीकमजी ज्ञान-पिपासु थे। इनके पास ग्रन्थों का अच्छा संग्रह था। निरन्तर जब भी समय मिलता कुछ न कुछ स्वाध्याय करते रहते थे। स्वामीजी के अनेकों ग्रन्थ इन्होंने कण्ठस्थ किये थे। याद करके अनेक ग्रन्थों को लिपिबद्ध भी किया था। उसके बाद उन ग्रन्थों की अन्य प्रतिलिपियाँ समय-समय पर दूसरों के द्वारा होती रहीं। अन्त समय में इन्होंने चौविहार संथारा किया।

तेरापंथ एक प्रकाश पुंज के रूप में इस धरती पर अवतरित हुआ। इसके आलोक में लाखों व्यक्तियों ने अपना मार्ग प्रशस्त किया है। तेरापंथ में आज तक अनेक श्रावक पैदा हुए हैं। जिन्होंने न केवल धर्मसंघ की ही सेवा की अपितु अपने नैतिक और सदाचारी जीवन से समाज और देश की भी सेवा की है और जिनका जीवन अगणित विशेषताओं से भरा हुआ है। मेरे सामने कठिनाई थी कि इस सीमाबद्ध निबन्ध में उन सबका दिग्दर्शन कैसे किया जाये।

उपरोक्त विवेचन में कई आवश्यक घटनाएँ छूट गई और कई महान् श्रावकों का जीवन वृत्त भी नहीं लिखा जा सका। साहित्य परामर्शक मुनि श्री बुद्धमलजी स्वामी द्वारा लिखे जा रहे 'तेरापंथ का इतिहास' (दूसरा खण्ड) ग्रन्थ में श्रावकों की विस्तृत जीवन झाँकी दी गई है, इतिहास के जिज्ञासुओं के लिए वह ग्रन्थ पठनीय है।

□□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org